जयपुर फुट के रचयिता डॉ. पी. के. सेठी

एम. आर. राजगोपालन

19वीं शताब्दी का तीन चौथाई हिस्सा गुज़र जाने के बाद ही चिकित्सा क्षेत्र का व्यावसायीकरण शुरू हुआ। मेडिकल टूरिज़्म और सुपर स्पेश्यलिटी हॉस्पिटल जैसे शब्द तो अभी-अभी ही आए हैं। ये सारी सुविधाएं आम आदमी, खास तौर से गरीबों की पहुंच से दूर ही बनी हुई हैं। ऐसे में डॉ. सेठी का जयपुर फुट आम आदमी के लिए किसी चमत्कार से कम नहीं है। गरीब और कमज़ोर तबके के वे लोग जिन्होंने किसी कारण अपने पैर खो दिए हैं या जो पोलियो के शिकार होकर कैलिपर्स का सहारा लेकर चल रहे हैं, ऐसे लोगों को उनकी हैसियत के अंदर इसे उपलब्ध कराना वास्तव में बहुत बड़ा काम है। जयपुर फुट उन उपकरणों से कहीं बेहतर, सुविधाजनक और टिकाऊ है जिनके लिए लोग पहले 10 से 50 गुना अधिक खर्च करते थे।

डॉ. प्रमोद करन सेठी का जन्म वाराणसी में 28 नवम्बर 1927 को हुआ था। इस वर्ष की शुरुआत में ही 6 जनवरी 2008 को उनका देहावसान हो गया। उनके परिवार में पत्नी सुलोचना, तीन बेटियां लता, नीता, अमृता और एक पुत्र हर्ष है।

डॉ. सेठी के पिता निहाल करन सेठी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक थे। 1930 में डॉ. सेठी के पिता का स्थानांतरण आगरा हो गया। इसी के चलते उनकी शिक्षा-दीक्षा आगरा में हुई। डॉ. सेठी ने एम.बी.बी.एस. और एम.एस. सरोजिनी नायडू मेडिकल कॉलेज आगरा से किए और एफ.आर.सी.एस. की डिग्री उन्होंने ईडेनबर्ग (यू.एस.ए.) से प्राप्त की।

भारत वापसी पर डॉ. सेठी सवाई मानसिंह (एस.एम.एस.) शासकीय अस्पताल एवं मेडिकल कॉलेज, जयपुर में व्याख्याता नियुक्त हुए। 1958 में चिकित्सालय में अस्थि रोग विभाग की स्थापना हुई और डॉ. सेठी को इसका प्रमुख बनाया गया। अस्पताल में अस्थि रोगियों के पुनर्वास की कोई सुविधा नहीं थी जबकि शल्य क्रिया के बाद इसकी बहुत ज़रूरत होती है। इसके लिए अस्पताल के पास न तो कोई साधन थे और न ही धन।

अस्पताल में एक परम्परा थी - संपन्न मरीज़ स्वस्थ होने पर चिकित्सकों को कुछ न कुछ उपहार दिया करते थे। डॉ. सेठी ने अपने विभाग में एक नियम बनाया कि अब से कोई भी चिकित्सक उपहार स्वीकार नहीं करेगा बल्कि उसके बदले कोई ऐसी चीज़ ली जाएगी जो अस्पताल के लिए उपयोगी हो। जब भी कोई उन्हें उपहार या पैसे देने का प्रयास करता, तो वे उससे फिज़ियोथेरपी सेक्शन के लिए नया उपकरण मंगवा लेते। जब मशीन न मिलती तो लकड़ी और पाइप जैसे प्राथमिक संसाधन मंगवा लिए जाते। डॉ. सेठी किसी कारीगर की तलाश करते और खुद उसके साथ मिलकर उपकरण तैयार करते।

डॉ. सेठी उस समय चिकित्सा के दौरान मरीज़ों को दिए जाने वाले रोज़गार प्रशिक्षण का स्वरूप भी बदलना चाहते थे। उस समय मरीज़ों को सिर्फ कढ़ाई-बुनाई जैसे हुनर ही सिखाए जाते थे। डॉ. सेठी एक कार्यशाला का निर्माण करना चाहते थे जिसमें मरीज़ वहां के उपकरणों का उपयोग कर अपनी योग्यता बढ़ाएं और सहयोगपूर्ण वातावरण में कार्य करना सीखें ताकि वे कोई अर्थपूर्ण कार्य कर सकें। इस काम के लिए अस्पताल में कोई

जगह नहीं थी।

अचानक एक संभावना तब उभरी जब अस्पताल परिसर में ही खुली एक चाय की दुकान की लीज़ समाप्त हो गई। दुकान की छवि खराब थी क्योंकि वहां हमेशा असामाजिक तत्व जमा रहते थे। अस्पताल प्रबंधन भी इसका कुछ दूसरा उपयोग करना चाहता था। प्रबंधन ने डॉ. सेठी को उस स्थान का उपयोग करने की अनुमति दे दी। फिर क्या था, डॉ. सेठी ने रातों-रात उस जगह अपनी कार्यशाला स्थापित कर दी। जब लीज़ के लिए दुकान मालिक पहुंचा, तो डॉ. सेठी ने कहा कि अब तो इसका उपयोग इलाज के लिए हो रहा है।

डॉ. सेठी एक बात के प्रति आश्वस्त थे कि व्यवसाय-सम्बंधी चिकित्सा से मरीज़ों की क्षमता बढ़ाई जा सकती है। इसके लिए उन्होंने गैर-परम्परागत संसाधनों और तकनीकों के उपयोग को बढ़ावा दिया। उन्होंने पैरों से चलाई जाने वाली आरा-मशीन (पैडल-सॉ) मरीज़ों को दी जिससे वे लकड़ी के सजावटी सामान बनाते थे। साथ ही उनकी कसरत भी हो जाती थी। पांसे और ताश के खेलों का उपयोग कर स्ट्रोक मरीज़ों के हाथ और दिमाग का तालमेल बढ़ाने का प्रयास किया जाता। आंशिक रूप से लकवाग्रस्त लोगों के हाथों एवं उंगलियों को सक्रिय करने के कुछ विशेष क्रियाकलाप भी सोचे गए। शरीर क्रिया विज्ञान विभाग का अपना छोटा-सा स्टाफ और सीमित सुविधाएं थीं, उसी से अपनी ज़रूरतों को पूरा करना था।

सवाई मानसिंह अस्पताल के अस्थि रोग विभाग का प्रमुख होने के नाते डॉ. सेठी का सारा ध्यान पोलियोग्रस्त अपाहिज़ों को सस्ते और सुविधाजनक उपकरण उपलब्ध कराने पर था। ऐसे मरीज़ों को सामान्य जीवन के योग्य बनाने के लिए जिन उपकरणों की आवश्यकता होती थी वे यहां से सैकड़ों किलोमीटर दूर मुम्बई और पुणे में ही उपलब्ध होते थे जहां तक सिर्फ धनी लोग ही पहुंच सकते थे। डॉ. सेठी अस्पताल में ही एक कार्यशाला स्थापित करना चाहते थे जहां पर कम-से-कम कुछ उपकरणों का निर्माण किया जा सके।

डॉ. सेठी का ध्यान एक पुरुष नर्स मोहम्मद खान पर गया जो प्लास्टर ढलाई का काम करता था, लेकिन मशीनों और तकनीकी कामों में उसकी बहुत रुचि थी। खान एक दस्तकार परिवार से था। उसकी क्षमताओं को परखने के लिए डॉ. सेठी ने उसे एक स्प्लिन्ट एवं कुछ अन्य औज़ार बनाने को दिए। डॉ. सेठी ने उसे ऑल इण्डिया इंन्स्टीट्यूट ऑफ फिज़िकल मेडिसिन एण्ड रिहैबिलिटेशन वर्कशाप, बम्बई में दो साल की ट्रेनिंग के लिए भेजा जहां उसे अपाहिज़ों के लिए उपकरण बनाने का काम सीखना था। खान 6 महीने में ही वह सब कुछ सीखकर वापस आ गया। डॉ. सेठी ने चाय की दुकान पर ही वर्कशाप का प्रबंध कर दिया जहां किसी मरीज़ ने दो और कमरे बनवा दिए थे। इस प्रकार खान का वर्कशाप और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यशाला एक ही छत के नीचे चल पड़े ।

खान के वर्कशाप को फैब्रिकेशन युनिट के नाम से जाना जाता था। इसका पहला उत्पाद था पोलियो मरीज़ों के लिए बनाए गए कैलिपर्स। पोलियो भारतीय बच्चों में काफी फैला हुआ था। और वयस्क होने तक या तो वे इससे ग्रस्त हो चुके होते थे या उनमें प्रतिरोध पैदा हो जाता था। शल्य क्रिया से पोलियो की कुछ ही विकृतियों को ठीक किया जा सकता था। लेकिन बच्चे को चलने के लिए कैलिपर्स की ज़रूरत होती थी जिससे उसके पोलियोग्रस्त पैरों को सहारा मिल सके। कैलिपर्स एक सामान्य उपकरण था और उसे बनाने में फैब्रिकेशन युनिट ने जल्दी ही महारत हासिल कर ली थी।

युनिट की क्षमताओं पर लगातार बढ़ते विश्वास ने डॉ. सेठी को कृत्रिम पैर बनाने को प्रेरित किया। सबसे साधारण कृत्रिम पैर उन लोगों के लिए थे जिनके घुटने के नीचे का हिस्सा जा चुका था। आगे चलकर 1965 में फेब्रिकेशन युनिट ने पाश्चात्य नमूनों पर आधारित 'सालिड एन्कल कुशन हील' (SACH) पैर का निर्माण शुरू किया।

SACH पैर को ऐसा आकार दिया गया था कि उसे जूते के साथ पहना जा सकता था ताकि उसका बनावटीपन भी छुप जाए और उसे सुरक्षित भी रखा जा

पुरस्कार व सम्मान

यह अचरज की बात नहीं है कि डॉ. सेठी के काम को मान्यता और ढेरों पुरस्कार मिले। पद्मश्री (1981), मैग्सेसे अवार्ड (1981), गिनीज़ अवार्ड फॉर साइंटिफिक अचीवमेंट (1982), राजस्थान विश्वविद्यालय की मानद डी. एससी. (1982), आर.डी. बिरला अवार्ड फॉर आउटस्टैण्डिंग मेडिकल रिसर्च (1983), गांधी मेमोरियल व्याख्यान रमन रिसर्च इंस्टीट्यूट बेंगलूर (1988), फेलो ऑफ इण्डियन एकेडमी ऑफ साइंसेस (1989), वर्ल्ड कांग्रेस इन प्रोस्थेटिक्स एण्ड ऑर्थोटिक्स, जापान का नड जेन्सन पदक और व्याख्यान (1989), डॉ. बी.सी. राय नेशनल अवार्ड (1989), अवार्ड ऐज़ मेडिकल टीचर (1997), इंडियन ऑर्थोपेडिक असोसिएशन की ऑनरेरी फेलोशिप (1999)।

सके। इसका महराबी तलवा चलने में आरामदायक था । लेकिन इसमें लगी कठोर लकड़ी की पट्टी जो टखने से उंगलियों तक लगी थी, कठोर सतह पर चलने और पालथी लगाकर या पैर मोड़कर बैठने में तकलीफ देती थी। इसके बावजूद लकड़ी के ये पैर गरीबों के लिए वरदान थे। डॉ. सेठी ने इस पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि लकड़ी की ये टांगें साधारण और सस्ती ज़रूर हैं लेकिन देखने में सुन्दर नहीं हैं। ये पहनने वाले को हमेशा अपंगता का एहसास दिलाती रहती हैं। मगर यही मरीज़ों को लगाई जाती थीं।

डॉ. सेठी जानते थे कि शुरुआती नावेल्टी असर खत्म होने के बाद लोग इन पैरों को जल्दी ही हटा देते हैं। एक जांच के दौरान पाया गया कि पैर सही माप के होने के बावजूद उपयोगकर्ता अपनी ज़रूरतों पर इन्हें पूरी तरह खरा नहीं पाते थे। सबसे अधिक समस्या जूतों को लेकर थी क्योंकि अधिकतर भारतीय लोग, रिवाज़ों के चलते, खेतों, घर के कुछ विशेष हिस्सों, मंदिरों आदि में नंगे पैर ही जाते हैं। यह जूता महंगा तो था ही, पानी व कीचड़ में इसके खराब होने का डर भी रहता था। इसके अलावा, शरीर की गति और इसकी लोच का सामंजस्य नहीं हो पाता था।

इस कृत्रिम पैर की खामियों के मद्दे नज़र डॉ. सेठी ने एक आदर्श पैर का खाका तैयार किया। अपनी ज़रूरतों को उन्होंने खान के वर्कशॉप में काम कर रहे शिल्पियों को बताया - पैर में जूते नहीं होने चाहिए, वह बिल्कुल नंगे पैरों की तरह दिखे, टिकाऊ और वाटरप्रूफ हो, इतना लोचदार हो कि नंगे पैर भी आसानी से चला जा सके, पालथी मारकर या पैरों को मोड़कर बैठा जा सके। और सबसे बड़ी बात कि यह सस्ते, आसानी से उपलब्ध कच्चे माल से बना सर्वोत्तम कृत्रिम अंग होना चाहिए।

जो पहला रबर का फुट बनकर तैयार हुआ वह प्राकृतिक जैसा दिखता था लेकिन था कठोर और टायर के रंग का। डॉ. सेठी इसके परिणाम से इतने निराश हुए कि उन्होंने इस काम को एक साल के लिए बंद कर दिया। लेकिन उनके दिमाग में खलबली मची रही। उन्होंने SACH फुट में नई तकनीक का उपयोग करके उसका वज़न कम करने पर विचार किया। परिणामस्वरूप बना पैर हल्का तो था लेकिन अब भी पालथी अथवा पैरों को मोड़कर बैठने के लिए उपयुक्त नहीं था।

डॉ. सेठी और उनके दस्तकार एक के बाद एक सुधार करते रहे। SACH फुट में से कठोर लकड़ी वाला हिस्सा हटा दिया गया। इससे पैर के पिछले हिस्से में खाली हुई जगह में स्पंज रबर भरकर कठोर रबर की कवरिंग से ढंककर बंद कर दिया गया। अब पैर काफी हल्का-फुल्का और टिकाऊ हो गया। अब भी पालथी या पैर मोड़कर बैठने के लिए उतना सुविधाजनक नहीं था।

इस प्रकार बने कृत्रिम पैरों के रंगों में परिवर्तन तब आया जब एक अपंग व्यक्ति के भाई ने अपनी रबर फैक्ट्री से रंगीन रबर देना शुरू किया। अब पैर हल्के, मध्यम और गहरे कत्थई रंगों में उपलब्ध थे जिन्हें व्यक्ति की त्वचा के रंग के हिसाब से पहना जा सकता था। पहले-पहल एक ही आकार के पैर बनाए गए और बाद में अलग-अलग आकार के सांचे बनाए गए। बाद में अंगूठा और दूसरी उंगली के बीच एक दरार भी बनाई गई ताकि लोग उस पर चप्पल या सैंडल पहन सकें।

कृत्रिम पैर बनाने के लिए उच्च तकनीक की आवश्यकता होती थी जिससे उत्पाद की कीमत बढ़ जाती थी और यह साधारण लोगों की पहुंच से बाहर हो जाता था। डॉ. सेठी ने अपने वर्कशॉप में जयपुर फुट बनाकर कृत्रिम अंग बनाने के लिए ज़रूरी उच्च तकनीक के मिथक को तोड़ दिया। जयपुर फुट न सिर्फ आम आदमी की पहुंच में था बल्कि उस समय बाज़ार में उपलब्ध उच्च तकनीक से बने कृत्रिम अंगों से कहीं बेहतर और टिकाऊ भी था।

1970 में जब तक जयपुर फुट का पदार्पण नहीं हुआ था तब तक बाज़ार में सिर्फ पाश्चात्य मॉडल के कृत्रिम पैर ही मौजूद थे। ये पैर पाश्चात्य जीवन शैली (जैसे कुर्सियों पर बैठने, वेस्टर्न टायलेट का उपयोग करने आदि) के अनुसार बनाए गए थे। ये सुविधाएं शायद ही किसी आम भारतीय के पास उपलब्ध हों। डॉ. सेठी द्वारा विकसित किया गया नया मॉडल भारतीय जीवन शैली (जैसे जमीन पर बैठना, नंगे पैर चलना) के अनुरूप बनाया गया था। इसके अलावा यह अधिक लचीला और मुलायम था जिससे व्यक्ति को अन्य कृत्रिम पैरों से अधिक सुविधा और स्वतंत्रता भी मिलती थी। देखने में भी यह बिल्कुल प्राकृतिक पैरों जैसा था। साथ ही यह वाटरप्रूफ था और ऊबड़-खाबड़ सतह पर चलने के अनुकूल था।

जयपुर फुट की मदद से लोग अपने पुराने व्यवसाय को फिर से अपना सके। ड्रायवर फिर से ड्रायविंग कर पाए, मज़दूर घर बनाने के काम में लग सके, पुलिसवाले की कदमताल फिर से शुरू हो सकी। जयपुर फुट का लाभ उठाने वालों में डॉक्टर, वकील, प्रबंधक, बाबू, मज़दूर, व्यवसायी, सेना के कर्मचारी, कलाकार, महिलाएं, बच्चे, जवान और बूढ़े सभी शामिल हैं।

मुझे डॉ. सेठी के साथ 1988 से लेकर 2008 में उनकी मृत्यु से पहले तक जुड़े रहने सौभाग्य मिला है। यह अवसर मुझे तब मिला जब विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी विभाग, भारत सरकार के डॉ. कुम्बले ने मुझे यह सुझाया कि गांधीग्राम को आर्टिफिशयल लिम्ब रिसर्च सेंटर की शुरुआत करनी चाहिए जिसमें डॉ. सेठी के निर्देशन में जयपुर फुट का निर्माण करके अपाहिजों को फिट करने का काम हो। तब गांधी ग्राम के कस्तूरबा अस्पताल की चिकित्सा अधीक्षक डॉ. कौशल्या देवी, एक श्रेष्ठ मेकेनिक श्री माइकल और मैं जयपुर गए। आर्थिक सहयोग विज्ञान व टेक्नॉलॉजी विभाग द्वारा दिया गया, तकनीकी सहयोग

जयपुर फुटः कुछ तथ्य

1. प्रसिद्ध नृत्यांगना और अभिनेत्री सुधा चन्द्रन उन हस्तियों में शामिल हैं जिन्होंने जयपुर फुट की बदौलत ज़िन्दगी में अपना मुकाम हासिल किया। जयपुर फुट की मदद से ही वे नाचे मयूरी फिल्म का कठिन नृत्य कर सकी थीं।
2. अंतर्राष्ट्रीय रेडक्रास कमेटी, अफगानिस्तान और ईराक जैसे युद्ध प्रभावित क्षेत्रों में युद्ध के दौरान अपने पैर गवां चुके सैनिकों की मदद के लिए जयपुर फुट का ही उपयोग करती है।
3. कारगिल युद्ध के दौरान घायल सैनिकों के लिए भी जयपुर फुट का ही उपयोग किया गया है।
4. जयपुर फुट न सिर्फ भारत बल्कि दुनिया के किसी भी कोने पर बैठे आम आदमी की पहुंच के अंदर सबसे सस्ते कृत्रिम अंग हैं। इस बात का खुलासा अक्टूबर 1997 की टाइम पत्रिका में हुआ जिसमें बताया गया कि जयपुर फुट की कीमत मात्र 28 डालर है जो दुनिया के अन्य हिस्सों में हज़ारों डॉलर में उपलब्ध कृत्रिम अंगों से बहुत ही कम है।

और रबर उपलब्ध कराने का काम रबर टेक्नॉलॉजिस्ट पी. मंथिराम और सुन्दरम इण्डस्ट्रीज़ रबर फैक्ट्री, मदुरै के इंजीनियर टी.एम. वैसपेरूमल ने किया। इनके सहयोग से गांधीग्राम में आर्टिफिशियल लिम्ब रिसर्च सेंटर की शुरुआत हुई। पिछले 20 वर्षों में हम 2000 व्यक्तियों को जयपुर फुट का लाभ दे चुके हैं। हम संतोकबा दुर्लभजी मेमोरियल हॉस्पिटल कम मेडिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट (जयपुर) को भी जयपुर फुट भेजते रहे हैं, जहां डॉ. सेठी इंचार्ज थे। इसके अलावा क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज हॉस्पिटल वेल्लोर, कस्तूरबा हॉस्पिटल मनिपाल जैसे कई अस्पतालों को भी हम जयपुर फुट पहुंचा रहे हैं। हम जयपुर फुट निर्यात भी कर चुके हैं। गौरतलब बात यह है कि जयपुर फुट को पेटेंट नहीं कराया गया है।

मैंने डॉ. सेठी को एक साहित्यिक व्यक्ति के रूप में भी देखा है। वह बहुत ही अच्छे पाठक थे और नई प्रकाशित चर्चित पुस्तकों पर उनसे गहरी चर्चा की जा सकती थी। उन्हें पेड़ों और फूलदार पौधों में विशेष रुचि थी। कुछ मौकों पर जब हम सड़क पर टहल रहे होते तो वो मुझे किसी पेड़ का नाम बताते और कई बार मैं उनसे पूछता भी रहता था।

डॉ. सेठी रात में दो घण्टे का समय पढ़ने के लिए रखते थे। उससे पहले तक उनसे कोई भी व्यक्ति मिल सकता था और राजनीति से लेकर साहित्य में नोबल पुरस्कार विजेता जैसे किसी भी विषय पर चर्चा भी कर सकता था। वे अधिकतर ऐसे चिकित्सकों के सम्पर्क में रहते थे जो गरीबों के बीच काम कर रहे होते या स्वास्थ्य प्रदान करने का कोई नया तरीका अपना रहे होते। इस तरह के दोस्तों की एक बड़ी ृंखला और लगातार अध्ययन ने उन्हें भारतीय स्वास्थ्य व्यवस्था को देखने की नई तार्किक दृष्टि प्रदान की थी। वे इवान इलिच, लुई थॉमस, तारा शंकर बंदोपाध्याय, मॉरिस किंग, ए.के.एन. रेड्डी, आशीष नंदी, स्टीफन गोल्ड, राज अरोल, एन.एच. अंटिया, ज़फरूल्ला चौधरी, ओलिवर सैक्स, रिचर्ड फाइनमैन, रेने डुबोई, हसन फैथी और ऐसे अनेक लोगों के विचारों और अनुभवों को सामने रख हमें समझाते कि भारतीय चिकित्सा में अधिक रचनात्मकता की ज़रूरत है और हमें उपनिवेशवादी मानसिकता और पैसे के दबाव की बेड़ियों से मुक्ति पाना चाहिए।

आज के दौर में चिकित्सा के बढ़ते व्यावसायीकरण से डॉ. सेठी खुश नहीं थे। वे कहते थे कि "अनिच्छा से ही सही, हमें इवान इलिच के इस आरोप को स्वीकार करना पड़ता है कि आधुनिक चिकित्सक मानवता पर लगे हुए सबसे घातक रोगाणु हैं।" ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता

सिर्फ 150 रुपए

सदस्यता शुल्क एकलव्य, भोपाल

के नाम ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से

ई-10,शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) 462 016

के पते पर भेजें।